अधूरे गीत

लेखक
हरीश भादानी

प्रकाशक
राजस्थान पुस्तक गृह
बीकानेर

प्रकाशक—
राजस्थान पुस्तक गृह,
पो० बॉ० १०, कोट गेट,
बीकानेर

मूल्य : तीन रुपये (३.००)

मुद्रक—
हरिहर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली।

ADHURE GEET : HARISH BHADANI : RS. 3.00

उन
बंधनों को
जिन्होंने
मुझसे
समर्पण का
अधिकार
छीन लिया।

प्रकाशक—
राजस्थान पुस्तक गृह,
पो० बॉ० १०, कोट गेट,
बीकानेर

मूल्य : तीन रुपये (३.००)

मुद्रक—
हरिहर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली।

उन
बंधनों को
जिन्होंने
मुझसे
समर्पण का
अधिकार
छीन लिया।

अपनी ओर से

अधूरे गीत मेरी प्रारम्भिक कविताओं का पहला संग्रह है। मैं अपनी ओर से कविता की परिभाषा करने नहीं जा रहा। लेकिन काव्य-सृजन की भूमि पर खड़े होते ही जो उत्तरदायित्व आ जाता है, उसे मेंने समझने का प्रयास अवश्य किया है। वह उत्तरदायित्व यह है कि मैं युग के साथ हँसूं और युग के व्यथित स्वरों में अपनी एक-एक सांस घोलकर सुखी युग के भविष्य की कल्पना करूँ।

मैं यह नहीं कहता कि काव्य-सृजन के पीछे मेरा कोई उद्देश्य नहीं। काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने वर्षों पूर्व काव्य-सृजन के सम्बन्ध में जिन मान्यताओं की स्थापना की थी, वे आज भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कसौटी पर सही उतरती हैं। काव्य-सृजन से यश प्राप्ति अथवा व्यक्तिगत अतृप्तियों की सौन्दर्य-अभिव्यक्ति के माध्यम से तृप्ति की आकांक्षा के साथ-ही-साथ कवि में एक लोकोपकारी भावना भी प्रस्फुटित होती रहती है जिसके सम्बल पर कवि युग की वर्तमान व्यवस्था का सही चित्र उतारता हुआ स्वर्णिम युग के निर्माण का सन्देश देता है।

यह सही है कि कवि की स्वप्नजीवी अभिलाषा अथवा जीवन की घुमावदार राहों पर होने वाली व्यक्तिगत अनुभूति सौन्दर्य के विभिन्न रूपों का प्रतीक बनकर प्रणय-गीतों में करवटें लेती है, हृदय-वीणा के तार झंकृत करती है और गीतों की हल्की-गहरी रेखाओं, रागों में रूठती है, हँसती है, रोती है और साकार भी होना चाहती है। किन्तु इन सूनी-सूनी उड़ानों के साथ बंधा हुआ जीवन का

यथार्थ रूप भी कवि की ओर आशा भरी आँखों से निहारता है। वह भी कवि की लेखनी से कुछ चाहता है।

आज की संकीर्ण सीमाओं में घिरे जीवन का सजीव चित्र उतारने में और सृजन का कल्याणकारी सन्देश देने में मेरी लेखनी कहाँ तक सफल हो पाई है, यह तो विद्वान् पाठक ही बता सकेंगे।

प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ किस कोटि की हैं, कौन-सा शिल्प है और अनुभूति-अभिव्यक्ति की दृष्टि से कहाँ ठहरती हैं, मैं यह नहीं जानता ; किन्तु मैं अपनी ओर से इन रचनाओं को "नई कविता" की संज्ञा अवश्य नहीं देता। क्योंकि हिन्दी साहित्य का अध्यार्थी होने के नाते अब तक "नई कविता" के नाम पर जो भी पढ़ा गया हूँ उससे न तो "नई कविता" की परिभाषा ही स्पष्ट होती है और न लक्ष ही। "नई कविता" के सम्बन्ध में हिन्दी के विद्वान् आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान ने कहा है कि योरुप और अमेरिका के वे पूंजीवादी देश, जिनके एशियाई-अफ्रीकी साम्राज्य का विघटन हो रहा है और जहां की सभ्यता और संस्कृति में भी प्रगति और विकास का कोई नया मार्ग दिखाई न देने के कारण मूल्यों के ह्रास और विघटन की प्रक्रिया भयंकर गति से चल पड़ी है, जहाँ इस विघटन को जीवन की अनिवार्यता मानकर विचारकों में "अस्तित्ववाद" जैसे समाजद्रोही दर्शनों का व्यापाक प्रचार हुआ है और जहाँ कुंठा, अनास्था और मानव-द्रोह की प्रवृत्तियों से आक्रान्त कविता को "नई कविता" और उसको औचित्यबल प्रदान करने वाली आलोचना को "नई अलोचना" के नाम से पुकारा जाता है।

इस प्रकार की "नई कविता" से मेरी लेखनी दूर है और 'नई आलोचना" से मेरा स्पष्ट अन्तर। कविता के सम्बन्ध में मेरी स्पष्ट धारणा यही है कि कविता, युग की, फोड़े की तरह उभरी व्यवस्थाओं को समान बनाते हुए और जीवन की कुरूपताओं को अनूठा सौन्दर्य प्रदान करते हुए वर्गहीन समाजवादी समाज की स्थापना की कल्पना को बल दे, कविता की आत्मा संहार की कुत्सित भावना

को पीछे धकेलकर मानवी-सौहार्द्र, विश्व-शान्ति और सृजन का मूर्त सन्देश दे ; वही कविता युग की अपनी कविता है । मेरी कविता को इस कसौटी पर परखने का उत्तरदायित्व विद्वान् आलोचकों-पाठकों पर है ।

बिखरी कविताओं को तरासे हुए मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय मेरे साथी-गुरु श्री प्रेमबहादुर सक्सेना, भाई यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, व भाई राजानन्द के स्नेह भरे सहयोग व पथ-प्रदर्शन को है ।

हरीश भादानी

छबीली घाटी, बीकानेर ।

कविता-क्रम

पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध

राजस्थानी

मेरा देश

मैं हँसूँ अगर तो चालीस कोटि देवों का देश हँसेगा।

मेरा देश कि जिसकी धरती सोना उगले,
डाल-फूल से आभा छिटके मणियाँ उछलें,
मत्त समीरण के डोले में हँसती फसलें देख,
कोकिल गाये और मोर मुदित हो मचलें।

यह नीली-पीली-हरी चूनरी ओढ़ धरा दुल्हन-सी लगती;
मैं भी पचरंगी पगड़ी पहन सजूँ तो मेरा देश सजेगा।
मैं हँसूँ अगर...

इस आँगन में हर दिन क्वांरी पायल बजती,
सजी सुहागिन मृदुल करों में मेंहदी रचती,
सावन की गदराई बदरी की छाया में,
मधुरस भीगी उन्मादित आशायें पलतीं।

जा द्वार-द्वार कावेरी-गंगा आँचल हिला बुलावा देती;
मैं झूम बहूँ लहरों की बाहों में तो मेरा देश फलेगा।
मैं हँसू अगर...

मैं तम-रिपु ज्योतित प्राची का स्वर्ण सवेरा,
माटी में मुस्कान भरूँ, वह कुशल चितेरा,
संघर्षों के सांपों के विषभरे फनों को,
सजग राग से तोड़ूँ, मैं वह निडर सपेरा।

पथ के झंझावातों को साहस की दीवार थाम ही लेगी;
मैं बढ़ूँ लक्ष्य तक गरिमामय गति से तो मेरा देश बढ़ेगा।
मैं हँसूँ अगर तो चालीस कोटि देवों का देश हँसेगा।

एशिया करवट बदल रहा है

आज
एशिया
नव जागृति की
करवट बदल रहा है ।

सदियों से
शोषण-उन्मूलन करते आये
शस्य-श्यामला धरती के वैभव का
पश्चिम के सौदागर,
ईसा की
लोलुप सन्तानों के कलुषित कर्मों से
काँपी धरती,
डोला अम्बर,
थर्राया नीला सागर;
स्वर्णिम मरु-रज के कण-कण पर,
नदी-नहर पर,
शैल-शृंग पर,
अब तक भी अंकित है
आर्त कहानी;
मानव बनाम दानव ने
अट्टहास कर
प्यास बुझाई,
सौ-सौ नर-वक्षस्थल चीर,

बहाकर
रक्त रवानी ।
कूट नीति
औ
दुर्जय शक्ति के सम्बल पर
गौरवशाली, उच्च मंज़िलें पाईं,
पर
देखा न कभी अस्ताचल;
सावधान !
अणु-उद्जन के मतवालो,
यह उत्पीड़न ढाने
काले मानव की रग-रग में
भड़क उठी दावानल ।
देख
त्रस्त धरती को
अरबी शोणित उबल रहा है ।
पूछ रही है
नील नदी
ओ
वाशिंगटन के देश !
बता
पश्चिमी-योजना
है किस मतलब का आयोजन ?
निश्चित है, तुम,
लिंकन के आदर्शों में
चाँदी की भिक्षा दे,
प्रारम्भ करोगे
यहाँ परिष्कृत दोहन ।

ओ
नर-भक्षक खूंखार भेड़ियों !
कब तक इन खूनी जबड़ों से
मां वसुधा का
मांस चबाते ही जाओगे ?
अरे
एशियाई पानी पर पलने वालों
कब तक
जागरूक जनमन का प्रबल उबाल
दबाते ही जाओगे ?
पिरेमिडों औ हिमगिरि के बेटों !
दुग्धपान की शक्ति आज दिखादो;
मक्का और मदीना के
प्रज्ज्वलित भाल पर
आँच लगाने वाली
निकृष्ट भीख ठुकरा दो।
कहदो :
गीता-कुरान का पौरुष मचल रहा है।



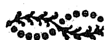
इतिहास लिखूंगा

सागर-तट से टकराती चंचल लहरों पर,
वेत्रवती, यमुना, कावेरी की नहरों पर,
आर्यभूमि के प्रहरी के मस्तक पर,
नए सृजन के श्रम का मैं इतिहास लिखूँगा।

झूम रही गेहूँ की हरी-हरी बालों पर,
फूलों के बोझे से झुकी हुई डालों पर,
और खेत में थिरक रहे यौवन की
'हे-हो-हे' गुंजन पर मैं श्रम का इतिहास लिखूँगा।

'अम्बर छूती संगमरमर की मीनारों पर,
लघुता में ही खुश-तिनकों की दीवारों पर,
मन्दिर के घड़ियालों-मस्जिद की पावन—
अजान की ध्वनि पर मैं श्रम का इतिहास लिखूँगा।

ममता भरे पालने में मुस्काने वाला,
कल की आशा, लाल सवेरा लाने वाला,
जब समता सूत्र पढ़ेगा, तब परिवर्तित
हर कण-कण पर मैं श्रम का इतिहास लिखूँगा।



कफ़न की दूकान

करता हूँ दरबारे-ग्राम गुजारिश;
कोई खोलो एक दूकान कफ़न की।

मुफलिस मज़दूरों के लिए कि जिनकी
चलते-चलते साँस फूल जाती है
नंगे हलवालों के लिए कि जिनकी
नशें तपन से भुलस भूल जाती हैं
आदम जात बैल के लिए कि जिसकी
बोभा ढोते कमर टूट जाती है।
और पेट के लिए कि जिसकी आग
बुझाने बरबस धार फूट आती है।

न जाने कब चौराहे पर ही सांस
तोड़ दे, चलता-फिरता फ़ाकाकश इन्सान,
न जाने बनिये का ही सूद चुकाता
मर जाए कब दुर्बल दीन किसान।
तिजोरी भरे खचाखच खून-पसीना
चूस - चूस कर पाखंडी धनवान्,
देखता रहे गगन से सड़ी लाश
का ढेर हमारा समदर्शी भगवान्।

तकाजा करता सब आशायें त्याग,
करो इन पर तुम इतना तो अहसान,
देख लो अगर सड़क पर लाश
कफ़न से ढांक जनाजा ले जाओ शमशान।

हाथ में झोली लेकर चलो माँगने
दो - दो आने पैसे का ही दान,
जुटाओ दौड़ - धूप कर इसे जलाने
और गाड़ने का सारा सामान।
मरसिया मज़लूमों का पढ़ो शान से
और करा दो सैर अदन की
करता हूँ दरबारे-आम······

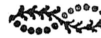
पर सहसा बोला मेरा मानस; इस
युग में चंदा मुश्किल से मिलता है,
मगर जानता हूँ, इस 'रामराज' में
तो ईमान बड़ा सस्ता बिकता है।
खुश हो; बेचो, इन्कलाब के अगर
इरादे, तख्त बड़ा सुन्दर मिलता है,
सत्ता शरणम् गच्छामि अगर कहो
तो फौरन नेता का बिल्ला मिलता है।

पर होगी बे-लज्जत गुस्ताखी
माँगे, रोटी-रोजी की दोहराना
जीने का अधिकार माँगने का
ही अर्थ बग़ावत का झंडा फहराना।
आज सोचते नेतागण, है पागलपन
ज़ुल्मों के खिलाफ अवाम जगाना,
है अपराध सिसकते और तड़पते
जिन्दा इन्सानों पर प्यार जताना।

है आजाद वतन की यह तस्वीर
जहाँ बरबादी झूम गीत गाती है,
उधर महल में छूम-छमा-छम और
भरी प्याली ले अदा छलक जाती है।

इधर नर्क में पलने वालों की आंतों
से बरबस चीख निकल आती है
नंगी लाश चूम कर मक्खी मानवता
पर कालिख पोत चली जाती है

हया अगर बाकी तो काले दाग मिटा कर
बात करो निर्माण-अमन की
करता हूँ दरबारे-आम गुजारिश
कोई खोलो एक दूकान कफ़न की



लेफ्टीनेंट चाहिये

नई निराली पल्टन को अब
अपना लेफ्टीनेंट चाहिये।

उस पल्टन के लिये नहीं,
बन्दूक तोप जो रखती है।
उस पल्टन के लिये नहीं,
जो तारीखों पर सजती है।
गांव-गांव औ शहर-शहर में बिखरे सैनिक जुटा सके;
रोटी-रोजी आवाज लिये नर-कंकालों को बढ़ा सके;
मरना-मिटना जो सिखा सके; बस ऐसा लेफ्टीनेंट चाहिये।
भारत की भूखी पल्टन को अपना लेफ्टीनेंट चाहिये।
सामंती युग में सैनिक पर
तलवार लटकती रहती थी।
आधी रोटी के टुकड़े को
कई आँख तरसती रहती थीं।
अब कहने को आज़ाद मगर मज़दूर अभी तक रोता है,
अफसोस! देश का अनदाता निज पेट बांध कर सोता है;
सच्ची आज़ादी दिला सके, बस ऐसा लेफ्टीनेंट चाहिये।
भारत की भूखी पल्टन को अपना लेफ्टीनेंट चाहिये।
वह कौन तगारी लिये जा रहा
पीठ-पेट का पता नहीं।
अरबों-खरबों का प्लान बना,
इसकी रोटी का पता नहीं।

ये धूल-भरे काले-नंगे गोदी में लाल सिसकते हैं;
अब यौवन भी तूफ़ान बना बेबस तूफ़ान उमड़ते हैं;
इन तूफ़ानों को बदल सके बस ऐसा लेफ्टीनेंट चाहिये।
भारत की भूखी पल्टन को अपना लेफ्टीनेंट चाहिये।

है आमंत्रण सब भूखों को
अब लम्बी फ़ौज बनाना है।
इन नेहरू जी-नन्दा जी को
भारत का रूप बताना है।

ये पंचशील, यह समाजवाद तो सब धोखे की टट्टी है;
भूल गये तो याद करो जन-जन शोले की भट्टी है;
जो शोला बन कर भड़क सके, बस ऐसा लेफ्टीनेंट चाहिये।
भारत की भूखी पल्टन को अपना लेफ्टीनेंट चाहिये।

उन झोंपड़ियों से निकल रही
उस चीत्कार का ध्यान अगर।
उस जले पेट की ज्वालाओं का
हो थोड़ा-सा ज्ञान अगर।

तो मां का दूध पिया जिसने, वह कदम बढ़ा आगे आये;
यह दुखियारों की फौज खड़ी मुस्कानें आज लुटा जाये;
मुर्दों को जिंदा बना सके, बस ऐसा लेफ्टीनेंट चाहिये।
भारत की भूखी पल्टन को अपना लेफ्टीनेंट चाहिये।

तहज़ीब सीख लो

कलाकार ! कविता लिखने से पहले
तो तुम इस युग की तहज़ीब सीखलो ।

दिग्गज पुरुषों की उच्च गोष्ठियों में
जाओ खादी की चादर लेकर ।
श्रोताओं पर छाप जमाओ, निज के
कलाकार होने का सबूत देकर ।

सत्य छिपाओ; झूठ सजा, साहित्य-
सभा में जो भी जी में आये बकदो ।
या सरकारी रंगमंच पर नांगल
चम्बल के दो शब्द-चित्र ही धरदो ।

बस भवन-भेदनी करतल ध्वनि में,
तुम्हीं सम्मानित कवि कहलाओगे ।
हर सांस्कृतिक आयोजन में तुम
हलकारे के साथ बुलाये जाओगे ।

दो-चार प्रशस्ति के अवलम्बन पर,
साहित्यिक प्रतिनिधि भी बन जाओगे ।
क्षमता से करो खुशामद तो तुम,
नभ-वाणी के गायक भी बन जाओगे ।

फिर गीत प्यार के धरती की धुन
तो शाश्वत साहित्य-निधि बन जायेगी ।

ओ कलाकार! तूलिका तुम्हारी
नोट कमाने का साधन बन जायेगी।
अब तो त्यागो भाव जगत को, केवल
शब्द सजाने की तरकीब सीख लो।
कलाकार कविता लिखने से पहले
तो तुम इस युग की तहज़ीब सीखलो।

सुमधुर कोमल कविता के गायक,
तुझ को तो युगसृष्टा बनना है,
सूखी ठठरी को मिले न दो गज
कफ़न, तुझे मखमली गद्दों में रहना है।

तो मज़दूर भूख से तड़प झोंपड़ों
में मरते हैं तो उनको मरने दो।
उष्ण आँसुओं से नारी नंगे अंगों
को अगर ढाँपती है, ढकने दो।

और करे नीलाम जवानी दो टुकड़ों
में कोठे पर चढ़ कर करने दो।
खा कर मैली धूल, देश के लाल
पेट अगर भरते हैं तो उनको भरने दो।

मानवता का खून शोषकों के जबड़ों
में पिस कर बहता है, बहने दो।
बढ़ती है भुखमरी, गरीबी औ पाखंड-
पाप, अन्याय अगर तो बढ़ने दो।

पर तेरा क्या उनसे नाता जो मर-
कर भी जीते हैं, कई ठोकरें खाकर।
तुम तो नेत्र मूँदकर लिखो प्रीति,
के गीत कल्पना के सागर में जाकर।

झांसे दो निर्माण-प्रगति के अवसर पर
यह आधुनिक तहज़ीब सीखलो।
कलाकार! कविता लिखने से पहले
तो तुम इस युग की तहज़ीब सीखलो।
घोर पाप है भरे मंच पर आकर
कहना कंगालों की करुण कहानी।
रूखी-सूखी रोटी की तो बात
छोड़ दो, मिलता नहीं पेट भर पानी।
प्रासादों की नीवों के नीचे दबती
है, हाय! देश की आज निशानी।
बूँद-बूँद कर बहती जाती है
मीलों में मजदूरों की रक्त-रवानी
भीमकाय पूँजी का निर्भय दानव
आज शोषितों पर करता मनमानी।
अरे! लूट ली जाती है निज हविस
बुझाने, चन्द चीथडों में वह पली जवानी।
तो फिर बोल शारदा के बेटे! क्या
तुमने उनकी पीड़ कभी पहचानी?
करुण-रुदन को राग बनाकर
गानेवाले! कब गाई उनकी ही वाणी?
पर याद रहे तुझको, यह तेरी
कलम हथौड़ों और हलों की ही थाती है।
गीत, सही जीवन के कलाकार
के साथ, धरा भी झूम-झूम गाती है,
मूल सत्य पहचान आज ओ कलाकार!
तुम अपनी ही तहजीब सीख लो।
कलाकार! कविता लिखने से पहले
तो तुम इस युग की तहज़ीब सीख लो।

जंगखोरों से

नूतन सृजन हो रहा विश्व का
तुम प्रलय मत बुलाओ रे जंगखोरो।

विज्ञान के क्रूर दांतों तले काँपती ममता,
शून्य में मंजिलें देख कर भीत है सभ्यता।
स्नेह से रिक्त हो, वह गगन जीत की
कामना मत सजाओ रे जंगखोरो।

घरघराहट से भोले हरिन आज हैरान हैं,
विष-बुझी बादली से पपीहे परेशान हैं,
ये मणियाँ जड़े मोर भूले हँसी—
तुम इन्हें मत सताओ रे जंगखोरो।

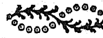
भोर की लालिमा में उदासी है छाई हुई,
अधखिली माधवी पाँखुरी भी डराई हुई।
खोजती गूँज हैं ये भँवर-टोलियाँ,
रागिनी मत चुराओ रे जंगखोरो।

लूटलीं तुमने दो बार हीरों भरी गोदियाँ,
पी गये प्यालियों में वे आँसू भरी लोरियाँ,
कह रही है दुखी मानवी, दानवी
प्यास यूँ मत बुझाओ रे जंगखोरो।

युग-शिल्पी की पुकार

विक्षुब्ध धरा का चीत्कार
सुनकर युग-शिल्पी बोल उठा—
ओ मानव !
सत्य-समष्टि के तल पर आ
अणु-उद्जन की सर्वनाशिनी शक्ति का
तुम करो विमर्दन।
मनु, ईसा और मुहम्मद की
पथ भूली सन्तानो !
क्यों हो
तुम कटिबद्ध स्वार्थवश
वसुन्धरा को ज्वालामयी बनाने ?
नाशक परीक्षणों का ज्वार उठा कर,
क्यों बढ़ रहे, मदान्ध हो ?
गीता, कुरान, बाईबिल का
शाश्वत अर्थ मिटाने।
भू, अम्बर, तारा-मण्डल के
एक मात्र अधिनायक बनने
जीर्ण-शीर्ण आँचल में लिपटी
व्यथित मनुजता के वःक्षस्थल पर
निर्भय हो क्यों करते नर्तन ?

स्वर्ण-रजत औ फौलादी घेरों में
कर मानवता को कैद,
मुक्ति का राग अलापो !
पर यह ईशा का
दिया हुआ अध्याय नहीं है ।
भौतिक, सभ्य, सुसंस्कृत बनकर,
श्रम का सही मूल्य औ
स्वतंत्रता का जन्म सिद्ध अधिकार छीन लो,
पर इतिहास बताता
न्याय नहीं है ।
आओ !
कलुषित भावों को,
अणु-उद्जन की
प्रलयंकारी लपटों को
हम प्राण-दायिनी मलय समीर बनादें,
शोषण और विषमता की दीवार ढहादें,
सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्
हित सर्वस्व समर्पण करदें ।



मुस्कान भर दो

आज विकलित धूलि-कण में किरण की मुस्कान भरदो।
गगन की ऊँचाइयों को चूमकर भी हिमगिरी बेचैन है,
वन में बसंती गीत गाकर भी छलकती निर्झरी बेचैन है।
खो गई हल्की उड़ानें तितलियों की झिगुरों की झांझ बेदम,
है रुआँसी सांझ, क्वारी आस मावस की अंधेरी रैन है।

सहमी हुई है डाल, भोले भँवर, भटकी बादली;
तुम पपीहों के रुँधे स्वर में सुरीली तान भरदो।

सृजन के शृंगार से यह मानवी दो बार दुल्हन सी साजी,
हँसते मचानों, पनघटों पर गोरियों के पांव की पायल बजी।
पर लुटा शृंगार ये दुल्हन लुटी अब मांग सिंदूरी मिटी,
युग के देवताओं की विधवा मनुजता सिसकियाँ भर-भर लजी।

है अनमना रे सुखद बचपन, मन लुभाना रूठना;
दूधिया दाँतों तले तुम चहचहाते प्राण धरदो।

ओ दरिन्दो! लहरता यह रेशमी आँचल जलाकर क्या करोगे?
जंगखोरो! पल्लवों पर सुप्त शबनम को रुलाकर क्या करोगे?
नील छाया में उभरती इन्द्र-धनुषी तार पहने, नव-उमंगो,
नाचती-हँसती फसल को आणवी अंगार देकर क्या करोगे?

ढह रही युग-मान्यताओं और विचिलित जिन्दगी में,
लो उठो अब स्नेह-सुमनों का नशीला प्यार भरदो।
आज विकलित धूलिकण में किरण की मुस्कान भरदो।

नये सृजन का गीत

युग-विश्वास !
त्रस्त धरती को
नये सृजन का गीत सुनादो ।
घुमड़ गगन में
घिरें घटायें,
तड़प, कड़क ले भले दामिनी,
घने तिमिर में
डूब लगाले
पूर्ण समाधि, भले यामिनी
अंधकार का
भेद
आवरण
शुभ्र-रश्मि-परिधान बिछादो ।
अरे बटोही !
तुझे रोकने
पग-पग आयेंगी बाधायें,
क्रोधित होकर
तन झुलसेंगी
तपते दिनकर की ज्वालायें ।

शत्-शत् युग बीतेंगे,
पर तुम
शाश्वत लक्ष लिये बढ़ जाना।
विश्व-विनाशक
अणु-उद्जन से
अथक-निरत लड़ते ही जाना,
तुम,
धरती के लाल एक
सौहार्द्र-शान्ति का
बिगुल बजादो;
नये सृजन का गीत सुनादो।

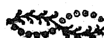


जीवन संघर्षों का घहराता सागर है

जीवन संघर्षों का घहराता सागर है ।
ज्वार और भाटे के
उठते-गिरते झूले पर,
मन के विश्वासों की,
उर के मृदु श्वासों की,
नौका विचलित पर; पल-पल बढ़ती रहती है ।

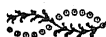
शक्तिवान् लहरों के
आघातों से पीड़ित,
व्याकुल मनु तापस की,
आलोड़ित मानस की,
हर धड़कन नस-नस कम्पन करती चलती है ।

मांझी सफल कि जिसके
चप्पू कभी न थकते,
तूफानों में हँसते,
सागर - मंथन करते,
मानव ! तेरा अनुचर हर भावी वासर है ।
जीवन संघर्षों का घहराता सागर है ।



कभी-कभी

साथो ! कभी-कभी जीवन - सागर में
संघर्षों के ज्वार उठा करते हैं।
प्रलय मचाती हहराती लहरों में,
तूफानों, झोंकों की उथल-पुथल में,
अभिलाषा और उमंगों की नौका
डरपायी, डगमग करने लगती है।
नभ में विद्युत् की तेज तड़प कड़कन,
घहराती भीम घटाओं का गर्जन :
विकट मृत्यु का रूप समझ, अनजाने
मांझी की रग-रग ढलने लगती है।
(पर) विश्वासों का सम्बल टूट न जाये,
साहस की डाडें छूट न जायें।
इस मंज़िल के झंझानिल प्रांगण में
जीत-हार के अन्त हुआ करते हैं।
साथी ! कभी-कभी जीवन - सागर में
संघर्षों के ज्वार उठा करते हैं।



काले बदरंगे कीड़े

प्राची के आदित्य देव की
प्रथम रश्मि से
नव विवाहिता वधु-सी संध्या बेला तक,
नीति, धर्म औ दर्शन के
गहरे अन्तराल में
चाहे अस्तित्व सहित
विस्मृत हो जाओ।
या
कल्पना-नर्तकी के
घुँघरू की सम्मोहक, झंकार,
स्वरों की लहराती
लोरी की हल्की-सी थपकी से,
मृदु भावों की धुरीहीन
शय्या पर सोकर,
युग के नग्न सत्य से
भ्रमवश विमुख हुए
सपनों के स्वर्णिम तार सजाओ।
या
बुद्धि-तुला पर नपे-तुले सिद्धान्त,
तर्क की संकीर्ण परिधि में
आत्म-ब्रह्म की
गहन समस्याओं का
प्रादुर्भाव करो;

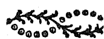
हल करते जाओ,
लिखते जाओ,
सुन्दर सुघड़ ग्रन्थ
जिनसे यश-अर्चन का पावन लक्ष—
सरलता से पूरा हो ।

या
नई सभ्यता की चका-चौंध
कर देने वाली
श्वेत यवनिका के पीछे
फौलादी यंत्रों की कला,
कुशलता के बे जोड़ नमूने,
स्वर्ण-रजत के
गोल, तराशे, चमकदार
सिक्कों में
नव भारत के भावी पुत्रों की
जननी-भगिनी की, निर्धनता में
परवश मुरझाई मुस्कान बिके ।

या
अनमोल मोतियों की लड़ियां
नयनों से बह निकलें ;
या
सिसकी को सैकड़ों उसासें
टकरायें संतप्त हृदय-सागर में ।

या
इन सब पर
भगवान, भाग्य औ परिस्थिति का,
इन्द्र-धनुष-सा

सतरंगा परिधान डाल,
शब्दों का जाल बुनें ;
भाषण से भ्रमित करें ;
कष्टों के दल-दल में,
उठ-उठकर गिरते,
गिर-गिरकर उठते
काले बदरंगे इन कीड़ों को ।
इसलिए कि
इन काले बदरंगे कीड़ों में फैली व्यथा
व्यक्त करने की रही नहीं क्षमता
वैभव के हाथों बिकी कलम में ;
इसलिए कि
वैभव के हाथों में बिकते
कलमकार की रग-रग में,
अब रहा नहीं कम्पन विद्युत्-सा,
जो प्रतिकार करे,
उन्मूलन करदे,
सड़े समाज की
घृणित व्यवस्था ।



गीतकार मर गया

ये देखो—
गीतकार के गीत जल रहे ।

यह गीत !
लुटे अरमानों का,
मोती से ओसकणों से गलते
जोवन के विश्वासों का,
घुटती आशाओं का,
जो बांधा गया
छंद के फंदे में ;
जो लिखा गया
मटमैले
कागज की कूबड़ पर ।

यह गीत अधूरा !
जिसमें मिटती गरिमा के
अवशेषों,
संकल्पों की मूक समाधि
झार-झार रोती है ;
देख—
छलकती नीली प्याली !
प्यार और अस्मत की,

अँगड़ाई की,
यौवन की,
निर्जीव निशानी,
यह भारत का भावी भाग्य-विधाता !
और यहाँ !
इस कूड़े की ढ़ेरी पर।

यह गीत तीसरा !
जिसमें लावा-सा
उबला पड़ता है
भूख-भूख का हाहाकार ;
मनुज की
हिलती-डुलती,
सड़ी-गली
लाशों से निकल-निकल कर
दबता ही जाता है
महल-मन्दिरों की इज्जत,
शान दिखावा,
और बनावट के नीचे।

जय सरकार
बांध की देवी !
जय-जय पैसा......
छोड़ो !

यह लो गीत पाँचवाँ !
जिसमें कटु रोष कसकता है
उन पर !
जो
मुगलिया शान पर रोते लालकिले की



सुर्ख सिला पर,
जमकर,
थैली-हाला,
नये सुभाषित,
और कुहासे-से
धुँधले
निर्माण-गीत
गा-गाकर,
सरस्वती का
करते हैं नीलाम
खुले चौराहे पर ;
औ उन पर !
जो
अंग्रेजी कब्रें
खोद-खोद कर
अन्तर के
साहित्यकार को
जीवित रखने का
सामान जुटाया करते हैं :
उन पर !
जो
सरकारी आदेश
प्राप्त कर,
वादों-गुटबाजी के
कुशल मदारी बनकर,
नई पौध के
जीवन को थोथे
आदर्श बताया करते हैं ;

जब कि उधर,
सृजन की स्वर-लहरी
विधवा-सी घुटती
स्वार्थ और शोषण के
कम्बल के मोटे घूंघट में ।

ये दमड़ी की
चकाचौंध में
नई सभ्यता,
संस्कृति का मूल्य आंकने वाले
साहित्यिक बनिये हैं !
युग-शिल्पी हैं !!
जिनकी जय में,
यश में,
औ पगड़ी में
लगा हुआ है खून
हजारों गीतों का,
जो जल रहे
चिता में धू-धू कर ।

यह गीत नया है
"युग-शिल्पी" !
इसमें जलती ज्वालायें !
देख !
कभी व्याकुल मत होना !
कहदो उनसे,
आग लगाओ,
गीत जलाओ,
पहले से आखिरी मिटाओ ।

(पर) इन गीतों की आहों से
धुँआ उठेगा,
और घुटन में
दम तोड़ेगी
मानवता की बैरिन
स्वार्थ-सर्पिणी ;
फिर
एक नया इन्सान बनेगा ;
एक नया संसार सजेगा ;
नये गीत का स्वर गूंजेगा
इसी धरा पर इसी गगन में



गीतों की गठरी

ले
गीतों की गठरी
भटका
गलियों-बाजारों में
कोई तो कभी खरीदेगा।
जा पूछा :
गत वैभव की
मधुर स्मृतियों में खोये
सूने
भुतहा प्रासादों से,
चमकीले, मूक मकानों से।
जा पूछा
चिकने कोलतार की
कुटी-पिटी सड़कों के
भीड़-भरे फुटपाथों पर,
औ
ऊँची सजी दुकानों पर।
अँगूर आम के ठेले वालों
और
चने वालों—
फेरी वालों से, तीखे सुर कर
जा बोला
त्यौहारों में

हर
प्रगतिशील-सम्मानित
सांस्कृतिक आयोजन में,
वादों-नीति की
गूढ़-गोष्ठियों,
साहित्यक दरबारों में ।
मुझको
मानव-निर्मित युग-नियमों पर
तब
श्रद्धा थी ;
था
पथरीला विश्वास कि—
श्रम से स्थल देह देख—
कोई तो कभी पसीजेगा ;
कोई तो कभी खरीदेगा ।
मैंने तो
बाग-बाग
फिर-फिर
अनार की डालों की—
सौ बार गुहारें की
अपने सूखे अधरों पर
युवा किरण-सी मुस्कानें
ला-ला ।
मैने तो
गोरे-काले
हर मन-मौजी लोगों की
हँस-हँस कर मनुहारें की
अपने उर के

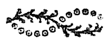
हरे घाव की व्यथा छुपा कर ।
यही नहीं,
चपला बूँदों की,
गहराई बदरी की,
नभ-संगम तक फैले सागर की,
शान्त-ऋषि से मूक
किनारों की मिन्नत को ।
यही नहीं,
मैंने तो
अंधकार में डूबे
कब्रिस्तानों
औ शमशानों की,
धीरज से बहुत उतारें की ।
पर
इन सबने
जब
मेरी आवाज़ अनसुनी करदी ;
तब
हिला
हिमालय-सा विश्वास
कि
यह गुम गगन-पवन
मेरी वाणी को सी देगा ;
ले
गीतों की गठरी
भटका
गलियों-बाजारों में
कोई तो कभी खरीदेगा ।

लो विष-डूबे गीत खरीदो

लो
विष डूबे गीत खरीदो !
आँसू-भीगे गीत खरीदो !
मेरे गीतों में
सावन की झुकी डालियाँ
काली चादर ओढ़
षोडशी विधवा-सी रहती है ;
मेरे गीतों में
बालारुण की लीला से—
खिलती कलियाँ
पतझर-सी
झुर-झुर कर झरती हैं ।
मेरे गीतों के छंदों में
बंधे फूल के हार नहीं,
मुझे
मचलती हुई बंसती से भी
कोई प्यार नहीं,
मधु की मनुहार नहीं करता
है भरा हलाहल
लेना हो—
लो विष डूबे गीत खरीदो ।

इन
गीतों की उदास कड़ियों में,
लहर-लहर कर
नयन-तार से उलझी
अलकों का शृंगार नहीं,
गीतों में
सुरभि समीरण में
गाता,
हिलता आँचल
औ
पायल की
हल्की-हल्की झंकार नहीं ;
इसलिये कि
जग में
हर मौसम के साथ
बदलती प्रीत है,
धरती पर है हार हृदय की
ऊंचाई पर जीत है,
भार नहीं है
यौवन का
माटी का हल्कापन
लेना हो—
लो विष डूबे गीत खरीदो ।
मेरे गीतों में
मुरझाई ममता के आँसू
और
व्यथित मानव की

उर-उद्वेलित पीड़ा है,
इन गीतों में
शान्ति-क्रान्ति के
सेनानी को दिये गये
आवाहन-आमंत्रण की भीड़ है
इसलिये कि
वर्ग-विषमता की
जहरीली रीत जले,
वसुधा पर
सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का
संगीत चले ;
इन गीतों में
नहीं पलायन
है युग-सत्य,
अगर लेना हो-
लो ! विष-डूबे गीत खरीदो !
आँसू-भीगे गीत खरीदो !

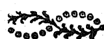


पियक्कड़ों की बस्ती

कला नगर में बड़ी अनोखी
पियक्कड़ों की यह बस्ती है ।
कोई ऊँघ रहा,
कोई जाग रहा,
कोई खोया गहन विचारों में,
कोई ढूंढ़ रहा अपना साकी
नभ के उन चाँद-सितारों में ।
वह तूली वाला चित्रकार,
वह घिसने वाला कलमकार हैं
जिनके भाव बरसते हैं
मटमैले कागज की कूबड़ पर ।
उस कोने वाला अदाकार,
वह वीणाधारी गलाकार ;
जो पीकर करता है अभिनय,
जो पीकर गाता सरस राग ;
शायद इसलिए कि
उनके सपनों की सुन्दर प्रतिमा
बनकर आये
हाड-मांस की
चलती-फिरती सब्जपरी
जो
यौवन के

बाझे से दबती,
जिसको
मादक पवन झकोरों से ही
पतली कमर लचकने लगती ;
जिसकी
पायल के घुंघरु थिरक-थिरक कर
नृत्य रचाते ;
तब
वीणा-कलम
गला-अभिनय
सब मिल कर
अँगुली, एड़ी की महिमा गाते ।
हररोज रात को
पीनक में महफिल सजती,
अरमान मचलते,
ना जाने ये
पंख लगा कर
कब घर के
खुरदरे बिछौने पर जा पड़ते ।
पूछा इन से ;
कब सोते हो ? कब जगते हो ?
तब कहते हैं—मित्र !
श्रीमती की कर्कश-वाणी
कर्णपटल को भेद जगाती-
"सात बजे हैं
उठो ! उठो ! ड्यूटी पर जाओ ।"
सुखद उमंगों का यह
सरस नजारा देख ;

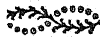
आत्मा बोल उठी—
ओ हिन्दी के नवजात शिशु !
यहाँ नहीं गलेगी दाल तुम्हारी
पहले से ही
कला नगर में
बढ़े-चढ़े
सम्मान-सम्पदा
स्वर्ण-रजत की
खोल चढ़ी ये बड़ी हस्तियाँ विद्यमान हैं—
जो
दिन भर सरकार-परस्ती करती,
सृजन, नई पीढ़ी का करती,
नैतिकता-दर्शन पर भाषण देती,
और
शाम को
लाल, गुलाबी, अँगूरी पानी में
रह-रह कर डुबकी लेती,
गीत रचाती ;
मंचों पर कठपुतली बन कर ;
या फिर
झूम-झूम कर गाती ;
किसी तरह भी
हर मैदान
जीत लेने का उपक्रम करती ।



फोड़ा और धरातल

(१)
एक
पका-सा दुखता हुआ फोड़ा
सारे शरीर को पीड़ा देता है,
हर सांस को बेचैन कर देता है।
काले-काले
रक्त भरे फोड़े को
काटने को
हाथ
रह-रह कर बढ़ जाते हैं
और
काट देने के बाद
मिलता है—
एक अनोखा आराम;
जगह भर जाती है;
नई चमड़ी आती है;
(फिर अंग का धरातल ठीक)
हर सांस ठीक।
(२)
जीवन की ये ऊँचाइयाँ,
ये गगन-चुम्बी चोटियाँ,
जो

हवा रोकती हैं
और
चाँद-सूरज की
सीधी किरण भी ।
इस
अंधेरी नीची घुटन में
चीख उठती है जिंदगी ।
ये
ऊँचाइयाँ
सीढ़ियाँ उतर लें
ढ़ह जाएँ
ये चोटियाँ
तब
धरातल सम हो जाएगा;
हवा भी सीधी चलेगी;
और
किरण भी,
फिर
जिंदगी जिएगी
हर साँस हँसेगी ।



मोती और मानवता

(१)
बहुत दूर के
नीले सागर की
बलखाती,
छलछलाती
फिसलती लहरें
किनारे से आती
माझी की नाव के
सिरे से
टकराकर कहती हैं—
पानी की अनगिन परतों के
सूने गर्भ में,
गहरे,
बहुत गहरे,
तुम्हारी लालटेन के प्रकाश से दूर;
जीवन की बाजी लगाने पर
डुबकी लगाने पर,
सीपी की
नन्ही-सी सुरंग में
आबदार मोती मिलता है।

(२)
भोर-सांझ की हँसती हुई किरण,
प्यारी हवा की हर हल्की हिलोर,

दूधिया दाँतों की तोतली हरकतें,
झांवर पड़ी आँख की बुझी-बुझी रोशनी
और
जिंदगी की रुँधी हुई सांसें
यन्त्र युगी मानव से कहती हैं—
पतली
लचीली
शिराओं के बोझिल जाल में,
मानवता उलझी हुई है।
अहम्! लिप्सा!
स्वार्थ! संहार की
स्याह झिल्लियों को भेद;
और
बहुत गहरा झांक
अपने अन्तर में;
तुझे
स्नेह,
श्रम,
मानवता के
आबदार मोती
मिल जाएंगे



सागर के इस पार

सुरभि समीरण से सिमटी
सागर की नील कान्त
चंचल लहरें
व्याकुल हो तट की
चट्टानों से टकराती बार-बार।

सू ं सांय-सांय की अनजानी—
भाषा में कहती ही रहती हैं
हर सलवट में सधे हुए
सन्देश:—
नील अम्बर औ
नील जलधि के
संगम के,
उस पार किनारे की
नीरव, निर्जन धरती के।

प्रतिपल प्रतिध्वनि होती रहती;
प्रतिक्षण व्यथा घुली
टकराहट भी होती रहती
मृदु उपालम्भ देती रहती,

छल छल करती
बूंदों की फीकी मुस्कानें।

उस दूर किनारे के
अनजान क्षितिज से
आतीं
उर उद्वेलित राग तरंगों के
आघातों से अणु-अणु कर
कटती ही रहती हैं
ये
अज्ञात साधना में लीन,
मूक चट्टानें।

कोटि युगों से चलता आया है क्रम-
और प्रलय के अन्तिम
क्षण तक भी चलता जायेगा।



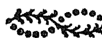
कुआँरी संध्या

अस्ताचल के रवि की
स्वर्णिम किरणों के
झीने तारों में लिपटी,
मृदु मुस्कानों के
छलक रहे बोझे से
झुकी हुई संध्या
सकुचाती बढ़ चली,
क्षितिज में दीप्त मणि पर
अलसाया अतृप्त प्यार बिखराने ।

सहसा मत्त समीरण पर
मँहदी रचे तैरते पाँव रुके;
झिल-मिल कर बलखाते
घूंघट का घेरा लांघ,
भीत हरिणी-से
कजरारे नयनों ने देखा—
तिमिरासुर डैने फैला कर,
निगल गया
अप्रतिम, अमित आभा को ।

अंधकार के बाहुपाश में
बँधी रही;
घुट-घुट कर
उठती रही
हृदय की उष्ण उसासें ;
और रात-भर
रोती रही कुआँरी सन्ध्या ।

राग प्रभाती की लहरी के साथ
उषा ने ली अँगड़ाई;
और दूर मंजिल के
प्रथम पथिक ने देखा—
विहँस विहँस कर खिलते
कमल पल्लवों पर,
औ हरी दूब पर
दूर-दूर तक बिखरी है
नयन मोतियों की
शत् भग्न भग्न मालायें ।



विवश निशा

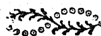
पिंजड़े की मैना-सी पराधीन,
घुप स्याह कुहासे में
शशि-मणि की
सुधा सरस धारों से
आलिंगन करने
नीरव सागर की
लहरों पर
तिरती तरणी के
कुशल मछेरे की
श्यामल जालों में
छटपट करती
मछली-सी व्याकुल
आतुर रजनी ।

रह-रह कर,
रजनी की सरद उसांसें
कम्पित करतीं
स्वप्नि तरल तरंगों को,
भीनी गुंजन से बेसुध
मृदु किसलय को
वन-वल्लरियों को ।

उधर दूसरी ओर
रेशमी तारों से
गुँथी नर्म शय्या पर,
प्यार और जीवन की
परिभाषा करते-करते,
मंजिल की अनजानी
राहों पर
चलते-चलते,
थका बटोही
चेतन मानस के
आँगन में
देख रहा था—
विवश
किसी विरहिन की
छाया;
नैनों के
निर्झर से गिरती बूंदे,
टेढ़े खिंचे हुए
काजल में डूबी बूंदें,
पतझड़ के
पीले पत्तों से,
शुष्क कपोलों पर
झर-झर कर
ढलती थीं।
फिर बरस-बरस
कर रीती;
औ निष्प्राण घटा-सी
केश-राशि,

ग्रौ केले के
मुरझाये पत्तों से
हाथों की
धुली हुई मेंहदी;
ग्रौ कुचली हुई
दूब सी
ग्राशा ग्रौर उमंगों की
बारातें।

दूर व्योम में
विवश निशा पर,
मुक्तामणियों से
झिल-मिल कर
मुस्काते थे
ग्रम्बर के तारे!



धीरे-धीरे आना साथी

जब अम्बर के नीलम जड़ी रात गहरी घुल जाए,
झिलमिल किरणों-सी तुम धीरे-धीरे आना साथी।

चढ़ते सूरज की सीधी किरण गुलाबी आशा की—
भीगी पलकों का पानी सोख लिया करती है।
युग की रीत, दिवस के कोलाहल में मेरे भोले—
विश्वासों को बहका कर छोड़ दिया करती है।
संध्या-सूरज के संगम के दोराहे पर आकर,
मेरी भूली-सी सुकुमार उमंगें थक जातीं;
जब बिखरी लहरों का अवगुंफन सूना हो जाए,
तब तुम पायल की झंकार सुनाने आना साथी।
धीरे-धीरे आना साथी

युग सारा आज पराया, फिर मेरे अनुराग भरे
अनुभावों के आघातों को कोई क्या समझे?
अनजानी आज बहारें हैं, फिर जीवन-वीणा के
गीतों की पीड़ित सांसों को कोई क्या समझे?
घुटी हुई अभिलाषा मेरी बुझी-बुझी आँखों में,
सावन-भादों की निर्झरणी बन मचला करती;
जब नभ-गंगा पर छाई कारी बदरी छट जाए,
मेरी व्याकुल सुधियों को सहलाने आना साथी।
धीरे-धीरे आना साथी

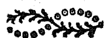
मैं तुझे बुलाने को तेरे घर आया बार-बार

मैं तुझे बुलाने को तेरे घर आया बार-बार,
पर भीतर से फिरकर कोई आवाज नहीं आई।

मेरी सांसों के सरगम पर सधे हुए गीतों
के सुर से विरही उर के तार बजाती होगी,
दर्पण में काजल की रेख खिंचे नैनों को
समझा कर रोली से मांग सजाती होगी।
मेरी आहट सुन कर द्वार खोलने तो आओगी;
पर तेरे कानों तक सांकल की झांझ नहीं आई।

पावस की छितराई बदरी से ये केश हठीले
आमंत्रण देने के मिस लहराते होंगे
लाली से लजते अधरों को मल्हारी-राग समझ
भर माए शब्द-भँवर मँडराते होंगे
कहने ही देहरी पर खड़ा रहा दीप-बेला तक
कुछ सुना नहीं, शायद तेरे घर सांझ नहीं आई।

कब चूमा है किसने नभ का दागी चाँद, छिटकती
औ मुस्काती हुई चाँदनी अब तक किसकी,
सूने अम्बर के आँगन में तारों के दीपों की
हुई झिलमिलाती ये लड़ियाँ अब तक किसकी।
मिलने का सन्देशा कौन कहे, वे मधुरस भीगी
शरमाती सांसें जो कल आई आज नहीं आई–

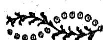


अधूरी बात

प्रिये अधूरी बात
लाल चूनरी ओढ़ लजीली
सांझ अभी तो आई ।
बिखराती हँसकर होले-से
आँचल की अरुणाई ।
अभी अधखुला घूंघट ही था,
घिरी अंधेरी रात—प्रिये…,

भटक रही तारों के पथ में
अन्तर की अभिलाषा ।
दुल्हन-सी व्याकुल नैनों में
मेरी प्यारी आशा ।
अभी सजी थी आधी दुल्हन
लौट गई बारात—प्रिये…,

सपनों की सौदागर तुझको,
मेरी व्यथा पुकारे ।
सूनेपन की इन राहों में
बैठी पंथ निहारे ।
गीली पलकों में आओ तो,
सम्हलादूं सौगात—प्रिये…,



साथी तुम बिन सब कुछ

साथी तुम बिन सब कुछ
अनजाना लगता है।
बहका-बहका चलता है
मन सपनों की नगरी में,
हारी हुई थकन बठी
है भावों की भँवरी में।
सांसों का सूना पथ
उलझा-सा लगता है
साथी तुम बिन सब कुछ
शृंगार बिखेरे सोई
मेरी तरुणी अभिलाषा,
सहमा-सा अन्तर भूला,
उद्बोधन की परिभाषा!
धड़कन का क्रम एक
बहाना-सा लगता है—
साथी तुम बिन सब कुछ
पीड़ा की चिनगारी में
झुलसा आँखों का सावन,
आज न जाने क्यों गुम-सुम
मेरे गीतों का पाहुन।
हर रुंधा हुआ स्वर
बेगाना लगता है
साथी तुम बिन सब कुछ

कटेगा कैसे तुम बिन सूनी रात ?

अमावस के गहरे घूँघट में
व्याकुल मेरी मधु-भीगी हर सांस।
अंधेरी लहरों की सिहरन में
सहमी-सी फिरती हर चंचल श्वास।
घटाओं की उलझन में तुमको
ढूँढ़ थकी बिन ब्याहे सपनों की बारात।
कटेगी कैसे तुम बिन सूनी रात ?

कुहासे की निष्ठुर झंझा में,
कँपता रहता मेरा उर-अन्तर।
अकेले में बोझिल घड़ियों के
चार पहर बन जाते हैं मन्वन्तर।
मँहदी रचे हाथ में अभी अछूती
प्रिये ! सजीली सुधियों की सौगात।
कटेगी कैसे तुम बिन सूनी रात ?

बँधी मुनहारों से आओ तो,
झिलमिल तारों का गाँव हंसेगा।
चाँदनी का अमृत छन-छनकर,
मिलनातुर अभिलाषा पर बरसेगा।
धीरे से कहो चाँद से, शरमाती,
गीली पलकों के संकेतों की बात।
कटेगी कैसे तुम बिन सूनी रात ?

आज न जाने क्यों मेरा हर गीत उदास है ?

अभी गीत की आँखों में
आँजा है काजल भोर का ।
अभी मँहदिया रंग हुआ
अधमुँदी पलक की कोर का ।

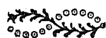
दो पल बीते सौतिन दोपहरी आयेगी,
मेरे गीतों का गीलापन पी जायेगी,
आज न जाने अंगारों की कैसी प्यास है ?
आज न जाने क्यों मेरा हर गीत उदास है ?

अभी गुलाबी चूनर पर
साधी सुधियों की झालर ।
अभी कल्पना की बूँदों से
भरी स्वरों की गागर ।

अभिलाषा के आंगन में बदरी घहरेगी,
आँखमिचौनी के मिस कुढ़-कुढ़कर बरसेगी,
आज न जाने बदरी का कैसा परिहास है ?
आज न जाने क्यों मेरा हर गीत उदास है ?

अभी सिहरनें उतर रहीं
मन की वीणा के तार में ।
अभी सलौनापन आया है
आकर्षण के ज्वार में ।

तारों के पहरे में सूनापन बोलेगा,
अँधियारा घुल-घुलकर सपनों को घोलेगा,
आज न जाने इस रजनी की कैसी सांस है ?
आज न जाने क्यों मेरा हर गीत उदास है ?



गीतों की गागर

मेरे गीतों की गागर भरी-भरी

मन की माटी गागर का तन,
दिया रागिनी की रेखा ने,
कुछ गहरापन कुछ हल्कापन ।
चुपके चाँद छिपा पूनम का,
रिसती पीड़ा छलकाये घड़ी-घड़ी—

सपने पूरे साध न पाया,
घुटी उसांसों के कुहरे में
आशाओं का मन कुम्हलाया,
विरह-मिलन की इस दुविधा में ।
भरमाई सुधियां सिसकें पड़ी-पड़ी—

उर में भावों की व्यार चले,
अनजाने लगते साथी का,
रूठा-रीझा-सा प्यार पले ।
जानें कौन किनारा लायें,
मेरे स्वर की नौकायें डरी-डरी—



क्या कह दूं इसको प्यार सखी

नभ-दीपों से झिलमिल करते,
भावों की बारात सजी।
मिलन-यामिनी की बाहों में,
सपनों की सौगात सजी।
रतनारे नयनों में उलझी,
अधरों की मुस्कान सखी।
क्या कहदूँ इसको प्यार सखी ?
ऊषा के आंगन में हँसती,
अरुण उमंगें देखी हैं।
खिली कली की अंगड़ाई में,
प्रीत बरसती देखी है।
पर जीवन की भरी दुपहरी,
आँसू की बरसात सखी।
क्या कहदूँ इसको प्यार सखी ?
अब नहीं प्रिये वह प्यार जो
सावन की बूँदों-सा छलके।
पतझार सहे, फिर खिल-खिल
बासंती लहरी-सा महके।
बीच भँवर में विश्वासों की
टूट गई पतवार सखी।
क्या कहदूँ इसको प्यार सखी ?

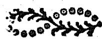


मन की कौन लगन

मन की कौन लगन रे साथी
उन्मन गीतों की बांसुरिया,
बिखरे केश किये योगिन-सी
पूछे, छिपे कहाँ सांवरिया ?
बिन बादल बूँदें बरसाये
ऐसी कौन पवन रे साथी
मन की कौन……

मन में छिपी प्यार की भोर,
बिन पहचाने आकर्षण में,
बँधती यह सांसों की डोर।
केवल धुँधला धुँआ उठाये,
ऐसी कौन अगन रे साथी
मन की कौन……

रीती किरणों-सी अँजुलियाँ,
जाने क्यों सोई हैं गुम-सुम—
मधुरिम आशा की पंखुरियाँ ?
बिन परभाती बाँहें खोले,
ऐसा कौन सुमन रे साथी।
मन की कौन……



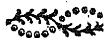
गोरी गीत अधूरे रह जाते हैं

लिखना चाहूँ लिख न सकूँ मैं,
रोना चाहूँ रो न सकूँ मैं;
बिन तेरे मैं अगर बुलाऊँ,
मौत हाय पा सकूँ कहाँ मैं !
आँखों से दो बूंद छलक जाते हैं।
गोरी गीत अधूरे रह जाते हैं॥

दर्द भरे गीतों में तुझको,
अपने पास बुलाना चाहूँ ;
तेरी ले तस्वीर सामने,
मैं ग़म आज भुलाना चाहूँ ;
पर धीरज के बाँध टूट जाते हैं।
गोरी गीत अधूरे रह जाते हैं॥

पाकर तेरा प्यार आज मैं,
नई बहारें लाना चाहूँ ;
तू ने गीत दिये जो मुझको,
नये राग में गाना चाहूँ ;
पर वीणा के तार टूट जाते हैं।
गोरी गीत अधूरे रह जाते हैं॥

दूर देश जा बसने वाले !
बता विदाई झेल सकूंगा ?
रहा खेलता तूफानों से ;
और भला क्या खेल सकूंगा ?
आओ मेरे सांस थके जाते हैं ।
गोरी गीत अधूरे रह जाते हैं ।।



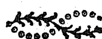
साथी मैंने घुल-घुल कर जीना छोड़ दिया है

अब तक तो मैं गहन निराशा के,
सागर में जी भरकर डूबा उतराया,
नीर भरे धुँधले नैनों से जीवन
की अरुणाई को झाँक न पाया,
किन्तु प्रीत की रीत समझ तम कालिमाएँ कर दूर,
आज निज पथ पर बिखरी कलियों को जोड़ लिया है।

व्यथा धुली सांसों से सपनों की,
लहरों पर विश्वासों के गीत बनाए;
अनजानी भूलों पर तूने घृणा—
भरी मुस्कानों के आघात लगाए,
गीत अधूरे होंगे कभी न पूरे आज हृदय-वीणा
से झंकृत भावों को मैंने ही तोड़ दिया है।

संघर्षों की ज्वाला में जलते
दीवानों को कब किसका प्यार मिला है ?
कंगाली की विभीषिका के सम्मुख,
भावों का घहराता ज्वार ढला है,
मैं धरती की एक झोंपड़ी का बेटा हूं, नभ के,
वातायन की रूप-निर्झरी से मुख मोड़ लिया है।

सुन ले साथी मेरी कलम प्यार
मरने का मातम नहीं मनाएगी,
मेरी वाणी युग-ज्वाला से विमुख,
प्रणय के गीत नहीं गाएगी,
आज स्वयं की पीड़ा से हूँ दूर, खेत-खलिहानों,
की बेबस आहों से मैंने नाता जोड़ लिया है।
साथी मैंने घुल-घुल कर जीना छोड़ दिया है।



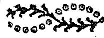
म्हारै देसड़लै री बात

ओ, ऊँचै हिवड़ै रो हेमालो !
तायै जुगाँ सूं जती मतवालो ;
गोदी में निपजै अगणित हीरा ;
ओ, आड़ कियाँ ऊभो रुखवालो !
पाणीरैड़ी पून थमै जद
लूमै-झूमै रे बरसात ।

घाट्याँ में घूम नद्याँ उमगावै ;
सोनलिया धोरा तेजो गावै ;
बी मोती भरियै सागरियै सूँ
पग पूजण छल-छल छोल्याँ आवै;
लोरयाँ गाती लैर चलै जद
सौ-सौ पायल बाजै साथ ।

बै डैण मेल रा मिणिया पोवै ;
मावड़ नेह रो दिवलो संजोवै ;
नोरां में गायां भैंस्यां दूजै ;
धणियाणी घर-घर छाछ बिलोवै;
मुलकाती माटी रा बोया
सगलो डुख-सुख लेवै बाँट ।

हिंदवानी चोटी चम-चम चमकै ;
मोमद री दाड़ी दम-दम दमकै ;
म्हे काबा कासी पूजाँ साथै ;
सिरजाँ तो घूमर साधै घमकै ;
खीर-खाँड सो राम-रहीमा
भारत रा बेटा ही जात।
म्हारे देसड़लै री बात ॥



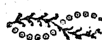
आ धरती पड़ी उजाड़ रे

ओ रे भोला, सुन गोपाला, धरती पड़ी उजाड़ रे !
बेडोली माटी नै मूला-धन्ना आज सँवार रे !
तावड़िये नै बिसर बावला
खुरपा कसिया सांभ ले ।
लूआँ रा बलता खीरा नै
छाती ऊपर थाम ले ।
लगा मढोठी, किसना-चाँदा, पग-पग बूझ उपाड़ रे ।
आ धरती पड़ी उजाड़ रे ।।
भर-भर ढेला फावड़िया
ऊँची-नीची पाट दे ।
झाड़-झाँखरा बाँवलिया नै
गिण-गिण वीरा काट दे ।
जोतण री रूत आई हरखा, कर धरती रो लाड़ रे ।
आ धरती पड़ी उजाड़ रे ।।
सूनो आभो दीसै, डरयै
सगला लोग लुगाई रे ।
देख कलपता टाबर टीमर
आँखड़ल्याँ भर आई रे ।
माँड माँडणा जिगरा भाई, कूई में घी ढाल रे ।
आ धरती पड़ी उजाड़ रे ।।

मोठ बाजरो पाकै लाडो,
गोफिणया उछाल रे ।
काँकड़ माथै घूमै हाली
टीड्या सूँ रूखाल रे ।
आँधड़ल्याँ झंझा रै आगै द्यो टोल्याँ री आड़ रे ।
आ धरती पड़ी उजाड़ रे ।।

पूजा करता रूठै बादल
तो पूजा नै छोड़ दे ।
मारा करै आभै रो राजा,
तो बारो बल तोड़ दे ।
मैनत पूज, आड नदयाँ सूँ, लाँबी नैय्या पाड़ रे ।
आ धरती पड़ी उजाड़ रे ।।

हिम्मत मत हारीजै, तेजा !
माग जोवतां आवैला ।
सींच हियै रा मोती मेघा
माटी अब मुलकावैला ।।
खेता में लुलझोला खासी, मूंगा जड़िया माल रे ।
आ धरती पड़ी उजाड़ रे ।
बेडोली माटी नैं मूला-धन्ना आज सँवार रे ।।



गोलीपो

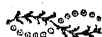
कर गोलीपा गोडा गाल्या
पर पापी पेट पल्यो कोनी ।

माँ-बाप सदा कैताँ-कैताँ,
म्हारी तो सगली जीभ घसी ।
थारै ई मैलाँ रे नीचै
म्हारी तो लास्याँ निरी धंसी ।
ऐं हैं ! ओ मकराणो कोनी,
बै हाड़ चिणयो रा चमकै है ।
थे मोस जिकाँ नै काट वण्या,
बै पड्या बापड़ा सिसकै है ।
लोई री चाट लग्यो मूंडो,
बो थाँरो हाल ठर्‌यो कोनी ।।

ल्यो पत्थर री खाण्याँ देखो,
मजदूर कुदाली बावै है ।
परसीणो मिल्योड़ा पत्थर,
चाँदी री थैल्याँ तावै है ।
पण मजदूरी देती विरयाँ,
थोथो एसाण जतावै है ।
भूलो रूप्याँ री खण-खण मैं,
ए कमा-कमा कुण लावै है ?
थो लाव-लाव रो लाग्योड़ो,
बो कोसा रोग गयो कोनी ।।

थाँरा धमीड़ सैंता-सैंता
दादा-पड़दादा सै चलग्या ।
भारी बगस्याँ ढोतां-ढोतां,
केस टाट रा सै झड़ग्या ।
म्हे पचाँ मराँ, थे मोज करो;
जद देखाँ थानै हीव बलै ।
रसगुल्ला खावै खंडकड़ा,
म्हारै तो बंधगी भूख गलै ।
गलै घातियो थे फंदो,
वो म्हारै हाल कट्यो कोनी ॥

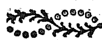
लत्याँ रा भूत वण्या सगला
कद मानै मीठी बात्याँ सूँ ?
तो भूखा मिनख सुधारैला,
थानै हाड़ोरी लाठ्या सूँ ।
जद गिण-गिण म्हे बदला लेसां,
तो होश ठिकाणै आवैला ।
तरसो ला रोटी-पाणी नै,
मैलाँ रा सपना आवैला ।
रूस-चीन में मूँज बली,
बट थाँरा हाल बल्या कोनी ॥
कर गोलीपो गोडा गाल्या, पण पापी पेट पल्यो कोनी ।



हेलो पाड़ रे

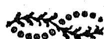
भोला ! मूला ! सुण गोपाल, फिर फिर हेलो पाड़ रे,
घर-घर हेलो पाड़ रे, मेघा राग उगार रे ।
इन्दर आज परवार
इन्दर आज परवार म्हारा बीरा
फिर-फिर हेलो पाड़ रे
आभो उमस कसीजें रे
बादल उमड़ पसीजें रे
तू खुरपा-कसी सम्भाल, ढांढ़ा-ढ़ोर पुकार रे
भाज्यो खेतां चाल रे, घर-घर हेलो पाड़ रे
बूझा आज उपाड़
बूझा आज उपाड़ म्हारा बीरा
फिर-फिर हेलो पाड़ रे ।
छांट्याँ छिर-मिर नाचै रे
हिरण्या-मोर कुलाचै रे
तू भर-भर बीज उछाल, बैला ने टिचकार रे
मेड्याँ खड़ो रुखाल रे घर-घर हेलो पाड़ रे
रोटी-राब मठार
रोटी राब मठार म्हारा बीरा
फिर-फिर हेलो पाड़ रे

पायल छम-छम बाजै रे
खड़ी गोरड़्यां लाजै रे
कर हे हो री हुँकार, ले लारे परवार रे
कोछा ऊँचा टाण रे, घर-घर हेलो पाड़ रे
पाकी फसल्यां झाड़
पाको फसल्यां झाड़ म्हारा बीरा
फिर-फिर हेलो पाड़ रे
इन्दर आज परवार रे
बूझा आज उपाड़ रे
रोटी-राब मठार रे
पाकी फसल्यां झाड़ रे
घर-घर हेलो पाड़ रे, मेघा राग उगार रे



बीते जुग री बात

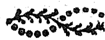
बीते जुगरी बात आज धोरां री धरती बोले
ईरी गोदी में बेंती ही कल-कल करती नदियाँ,
हर्या खेतड़ाँ में लहराती बे हीराँ री लड़ियाँ,
था गणतंतर राज, अठे ही अमर पूत बे पलिया ।
गौरव रो इतिहास दब्योड़ो आज आपरो खोले—
बीते जुग री बात
ईं धरती रा जाया हिल-मिल गीत हेत रा गाया,
देशड़ले री आण-बाण रा गिण-गिण पाठ पढ़ाया,
सींच ज्ञान रो तेल, त्याग औ तप रा दिया जगाया ।
बीं धरती पर आज चानणो टिमटिम करतो डोले—
बीते जुग री बात
ईं टीबां में ही रलियोड़ी बे बात्यां सरसाणी,
आभे में गूंजे आंपारे बीं पुरखां री वाणी,
जगमग करती रीत-नीत ने फेरूँ पाछी लाणी ।
आज आँपणी ताकत ने, ले धरा ताकड़ी तोले—
बीते जुग री बात
जुग बीत्यो, अब आंध्यां बाजे धरती आज बल्योड़ी,
बण भागीरथ गंगा लाओबा पाताल गयोड़ी,
फेरूँ पुन्य धरा ने कर दो सत् साहित्य सज्योड़ी ।
"हरी हुवेली मरू मां तू" थारा सपूत सै बोले—
बीते जुग री बात......
बीते जुग री बात आज धोरां री धरती बोले



देश ने हर्यो बणावां

भायां आज कमर कसलो रे, देश ने हर्यो बणावां
सांझ हथोड़ा हाथां में
लो-पत्थर ने पिघलावां,
घण-घण करती चोट पड़े
पुल पल में आज बणावां।
गरीबी दूर भगावां, देश ने हर्यो बणावां
रेतड़ रे टीबां रे ऊपर
घम-घम घूमर बाजै,
आज बांध ली आंधी ने
बा बैठ खुणे में लाजै,
मां भरु री प्यास बुझावां, देश ने हर्यो बणावां
आज उठोले खुरपां-कसिया
बूझा बाढ़ण चालां,
नैर्यां सूं पाणी ड़ो आसी
उगे भोकला दाणा।
अन रा ठाठ लगावां, देश ने हर्यो बणावां
आज अपांरा टाबरिया
बण हीरा हमें चमकसी,
दुनियां में भारत रो गौरव
दमदम और दमकसी।
ज्ञान री जोत जगावां, देश ने हर्यो बणावां

गौतम-गांधी रे सुपने ने
सांचो आज बणासां,
संत विनोबा री वाणी ने
घर-घर जाय सुणासां ।
हालो सै सपूत बण जावां, देश ने हर्‌यो बणावां
गरीबी दूर भगावां !
गीत सै रिलमिल गावां !
सुख-समता सरसावां !
देश ने हर्‌यो बणावां !
भायां आज कमर कस लो रे, देश ने हर्‌यो बणावां



टाबरिया

बरण सूरज-चाँद चमकसी रे - ए टाबरिया
ले चोखी सीख पलकसी रे - ए टाबरिया

आओ सै मिल धूड़ भर्या हीरां ने आज तरासां,
गौतम-गांधी पाठ दिया, बे आंने आज भरणासां,
जद दम-दम और दमकसी रे - ए टाबरिया

हुया जिके नल-नील अठे बे फेरूं आज़ बरणारणा,
ईयाँ सूं आंपाने उमड्या सागर आज बंधारणा,
आंधी-तूफान तड़कसी रे - ए टाबरिया

आंपारी छाती रा चाला आने आज दिखासां,
जात-पांत रा भेद पड़्या बे आंपा आज मिटासां,
गल-बाथ्यां डाल मुलकसी रे - ए टाबरिया

भटक्योड़ा भाईड़ा ने साचोड़ी राह बसासी,
भेद-भाव ने लगा पली तो सुख-सबता सरसासी,
जद सैंग फूलसी-फलसी रे - ए टाबरिया

